Indian J. Soc. & Pol. 05(I):2018:89-92 Special Issue **ISSN : 2348-0084(PRINT)**
UGC List No. 47956 **ISSN: 2455-2127(ONLINE)**

भारतीय राजनीति में जातिवाद

श्वेता सिंह[1a]
[a]राजनीति विज्ञान विभाग, विनोबा भावे विश्वविद्यालय ,हजारीबाग, झारखण्ड, भारत

ABSTRACT

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय राजनीति का आधुनिक स्वरूप विकसित हुआ। अतः यह संभावना व्यक्त की जाने लगी कि देश में लोकतांत्रिक व्यवस्था स्थापित होने पर भारत से जातिवाद समाप्त हो जायेगा लेकिन ऐसा नहीं हुआ बल्कि जातिवाद ने न केवल समाज में बल्कि राजनीति में भी प्रवेश करके उग्र रूप धारण कर लिया है। भारत में जातिवाद ने न केवल यहाँ की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, प्रवृतियों को ही प्रभावित किया है, बल्कि राजनीति को भी पूर्ण रूप से प्रभावित किया है। भारत की राजनीति में जाति ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। केन्द्र ही नहीं राजस्तरीय राजनीति भी जातिवाद से प्रभावित है, जो लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए बहुत ही खतरनाक है, क्योंकि इसके कारण राष्ट्रीय एकता एवं विकास मार्ग अवरूद्ध हो रहा है।

KEYWORDS: *दलित, सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक, संविधान, राज्य–समाज।*

भारतीय राजनीति के प्रमुख मुद्दों में जातिवाद सर्वोपरि है, जातिवाद किसी न किसी प्रकार हमारी राजनीति को प्रभावित करती है, संविधान निर्माण के समय से ही इनमें कुछ सुधार किये जा रहे हैं, कभी किन्हीं राजनेताओं के द्वारा तो कभी सुधार प्रस्ताव के द्वारा जातिवाद नामक मानसिकता को सुधारने का प्रयास किया जाता रहा है। इसका गवाह इतिहास स्वयं है, आज राजनीति में या मनुष्य के जीवन को यदि सबसे ज्यादा प्रभावित कुछ करता है, तो वह है– "जातिवाद"। इसकी जड़े प्राचीनकाल से ही इस कदर भारतीय राजनीति में जमी हुई है, कि इसे निकाल फेंकने का प्रयास भर मानव मात्र कर पाया है। तमाम प्रयासों के बावजूद भी भारतीय राजनीति में अपनी जड़ों को जमाये हुए हैं, जो वर्तमान राजनीति में एक भयंकर बीमारी प्रतीत होता है।

हमारे समाज में एक बड़ी ही व्यापक और मुख्य भूमिका अति–पिछड़ों तथा दलितों की है, दलितों का हमारे जीवन में प्राचीन काल से ही विशेष भूमिकाएँ रही हैं, ये समाज के ऐसे वर्ग है, जो अपना एक अलग महत्व रखते हैं, अब प्रश्न ये है, कि ये दलित आये कहाँ से– इसकी जड़ में जातिवाद है। भारत में ही नहीं बल्कि संपूर्ण विश्व में जातिप्रथा किसी न किसी रूप में व्याप्त है, जो एक गंभीर सामाजिक कुरीति है।

वैदिक काल में वर्ग–विभाजन किया जाता था, जिसे वर्ण व्यवस्था कहा जाता था। यह जातिगत न होकर गुण एवं कर्म पर आधारित था। समाज चार वर्गों में विभाजित था। ब्राह्मण – धार्मिक तथा वेदों से जुड़े कार्य करते थे। क्षत्रिय – देश की रक्षा तथा प्रशासन से जुड़े कार्य करते थे। वैश्य – कृषि और व्यापार का कार्य करते थे तथा शूद्र को इन तीनों वर्णों की चाकरी करनी पड़ती थी। वर्ण–व्यवस्था और जाति–व्यवस्था में सबसे बड़ा अंतर यह है कि वर्ण का निर्धारण व्यवसाय से होता था, जबकि जाति का निश्चय जन्म से होता था। इस प्रकार जाति–प्रथा भ्रष्ट सिद्ध होती गई।(अखिल भारतीय शोषित कर्मचारी संघ, पृ० 726)

प्रो० रूडोल्फ के अनुसार "भारत राजनीतिक लोकतंत्र के संदर्भ में जाति वह धुरी है, जिसके माध्यम से नवीन मूल्यों और तरीकों की खोज की जा रही है। यथार्थ में यह एक ऐसा माध्यम बन गयी है, कि इसके जरिए भारतीय को लोकतांत्रिक राजनीति की प्रक्रिया से जोड़ा जा सकता है।" प्रो० रजनी कोठारी अपनी पुस्तक "कास्ट इन इण्डियन पॉलिटिक्स" में भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका का विस्तृत विश्लेषण किया है। उनका मत है कि अक्सर यह प्रश्न पूछा जाता है, कि क्या भारत में जातिप्रथा खत्म हो रही है? इस प्रश्न के पीछे यह धारणा है कि मानो जाति और राजनीति परस्पर विरोधी संस्थाएँ हैं।

भारत में जाति और राजनीति में आपसी संबंध को समझने के लिए चार प्रमुख बिन्दुओं को समझना आवश्यक है–

1)भारत में सामाजिक व्यवस्था का संगठन ही जाति के आधार पर हुआ है। राजनीति केवल सामाजिक संबंधों की अभिव्यक्ति मात्र है, इसलिए सामाजिक व्यवस्था राजनीति का स्वरूप निर्धारित करती है।

2)लोकतांत्रिक समाज में राजनीतिक प्रक्रिया जातीय संरचनाओं को इस प्रकार प्रयोग में लाती है, ताकि उनका सहयोग और समर्थन के द्वारा अपनी राजनीतिक स्थिति को और भी अधिक मजबूत बना सके।

3)भारतीय राजनीति सदैव 'जाति' के इर्द–गिर्द धूमती है, यदि किसी व्यक्ति विशेष को राजनीति में सफलता चाहिए। तो वह किसी संगठित जाति का सहारा लेता है।

4)वर्तमान में जाति विशेष का संगठन ही ज्यादातर राजनीति में भाग ले रही है। अतः स्पष्ट है कि वर्तमान में जाति का विशेष महत्व 'राजनीति' में है।

समाज के विभिन्न वर्गों तथा जातियों का समर्थन पाने के लिए राष्ट्रीय आंदोलन के नेता उन सब संस्थानों के खिलाफ थे,

1: Corresponding Author

जिनकी प्रवृति भारतीय जनता को विभाजित करने की थी। सार्वजनिक प्रदर्शन विशाल जनसभाओं और सत्याग्रह संघर्षों में सामुहिक रूप से भाग लेने से जाति चेतना कमजोर पड़ गयी, जो लोग स्वतंत्रता और समानता के नाम पर विदेशी शासन से आजादी के लिए लड़ रहे थे, वे जाति व्यवस्था का समर्थन नहीं कर सकते थे। इस प्रकार आरंभ से ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और वस्तुतः संपूर्ण राष्ट्रीय आंदोलन जातिगत विशेषाधिकारों का विरोधी था। उसने जाति लिंग धर्म के भेदभाव के बिना व्यक्ति के विकास के लिए समान नागरिक अधिकारों तथा समान स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया।(भारत का संविधान,1991,पृ05)

दलितों के मसीहा कहे जाने वाले बाबा साहब डॉ० भीम राव अम्बेडकर जो स्वयं एक दलित थे, अपना सारा जीवन जातिगत जुल्म के खिलाफ लड़ने में लगा दिया। उन्होंने अखिल भारतीय दलित वर्ग संघ (All Indian Depressed Classess Federation) की स्थापना इसी उद्देश्य से की ताकि दलितों में जागृति की भावना को विकास हो। अनुसूचित जनजातियों के कई अन्य नेताओं ने अखिल भारतीय दलित वर्ग परिषद् (समिति) की स्थापना की। दक्षिण भारत में गैर ब्राह्मणों ने बीसवीं सदी के तीसरे दशक के दौरान ब्राह्मणों द्वारा अपने उपर लादी गई निर्योग्यताओं के खिलाफ संघर्ष करने के लिए 'आत्मसम्मान' आंदोलन चलाया। सारे भारत में मंदिर प्रवेश पर रोक तथा इसी तरह के अन्य प्रतिबंधों के विरोध में दलित जातियों ने अनेक सत्याग्रह आंदोलन चलाये।

बी० आर० अम्बेडकर अपनी मृत्यु के बाद दलितों के लिए एक आदर्श के रूप में उभरे हैं। दलितों को इससे काफी लाभ मिला है। वे इनके लिए एक उदाहरण और प्रेरणा दोनों ही रहे हैं। वे उच्च कोटी के बुद्धिजीवी थे, जिन्होंने उच्च जातियों द्वारा बनाये गये धेरे को तोड़ा तथा अपनी मृत्यु के कई दशकों के बाद भी वे अपने अनुयायियों को ऐसा करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। दरअसल अम्बेडकर के व्यक्तित्व ने पूरे देश में दलितों को एक सूत्र में बाँधा है।(वसंत कुमार पृ0702)

परंपरागत भारतीय समाज में जाति–व्यवस्था की संपूर्ण संरचना इस प्रकार थी जिसमें ब्राह्मणों की स्थिति सर्वोच्च थी, लेकिन आज सामाजिक व्यवस्था की रूप–रेखा राज्य के द्वारा बनाए गए कानूनों द्वारा निर्धारित होती है। आधुनिक मूल्यों के उदय के साथ ही धार्मिक विश्वास स्वयं ही लौकिक जीवन से दूर हट रहे हैं। व्यक्तियों को संविधान द्वारा समानता का अधिकार दिया गया है। अतः व्यक्ति की स्थिति का निर्धारण आज जातिगत स्थितियों से न होकर उसकी योग्यता और कुशलता के आधार पर हो रहा है। जाति–व्यवस्था की संरचना स्तरण में जिन व्यक्तियों को अस्पृश्य दलित अथवा अंत्यज मानकर समस्य अधिकारों से वंचित कर दिया गया था, उनकी स्थिति में आज काफी परिवर्तन हुआ है। महात्मा गांधी और अंबेडकर के प्रयत्नों से इन व्यक्तियों को समान अधिकार ही नहीं दिये गये, बल्कि सभी सरकारी नौकरियों व राजनीतिक संस्थाओं में उनके लिए स्थान भी आरक्षित कर दिये गए हैं, जिससे उनकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति में सुधार हो सके।

समकालीन भारत में अन्तर्जातीय विवाहों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। विधवा विवाह को अधिक से अधिक प्रोत्साहन दिया जा रहा है, कानूनों द्वारा ऐसे विवाहों को मान्यता दे दी गई है। पारंपरिक जाति–व्यवस्था में प्रत्येक जाति अपने से निम्न जाति के सदस्यों द्वारा स्पर्श किये गए भोजन को ग्रहण नहीं करती थी। जबकि वर्तमान में जाति का यह आधार लगभग समाप्त ही हो गया है। आजकल शहरों में सैकड़ों व्यक्ति एक साथ कारखानों में काम करते हैं और अवकाश के समय सब साथ बैठकर भोजन करते हैं। होटल, जलपानगृहों तथा उत्सवों में भी सभी जातियों के व्यक्ति उस भोजन को ग्रहण करते हैं जो किसी भी जाति के अज्ञात व्यक्ति के द्वारा बनाये गए हों। जिनका स्पर्श करना भी जाति–व्यवस्था द्वारा कभी वर्जित था।

जाति व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य था कि वह अपनी जाति के सदस्यों से ही अधिकतम संपर्क बढ़ाए, उच्च जातियों की श्रेष्ठता में विश्वास रखे और निम्न जातियों से दूरी बनाए रखे। आज बहुत से उच्च जातियाँ अपने स्वार्थों को पूरा करने के लिए उन सभी व्यक्तियों से संपर्क स्थापित करती है। जाति व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्येक जाति का व्यवसाय निश्चित होता था जो अनुवांशिक होता था। वर्तमान समय में जाति का यह आधार लगभग समाप्त हो चुका है। नगरों में सभी जातियों के व्यक्ति अपने–अपने अलग व्यवसाय में लगे होते हैं, इस तरह अब व्यवसायिक जीवन की गतिशीलता ने सभी जातियों को समान जीविकोपार्जन का अवसर प्रदान किया है।

माननीय सुप्रीम कोर्ट के न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह महोदय ने इंदिरा साहनी बनाम भारत संघ के निर्णय में लिखा है– "संविधान ने जाति व्यवस्था को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया और इसने विधि के समक्ष समता का आश्वासन दिया। अनुछेद 15 (2) और 16)2) के अधीन जाति के प्रति निर्देश केवल इसे समाप्त करने के लिए है।" इसी निर्णय में आगे लिखा गया है– "अब जाति व्यवस्था, जिसे संविधान के रचयिताओं ने समाप्त कर दिया है, विभिन्न रूपों में अपना धृणित सिर उठाने का प्रयत्न कर ही है।"(राजकिशोर,पृ.074)

बताया जा सकता है कि भातर के संविधान ने जाति व्यवस्था को समाप्त नहीं किया है, संविधान ने जिसे समाप्त किया है, वह है– 'अस्पृश्यता' न की जाति व्यवस्था। संविधान के अनुछेद 15(2) ने जाति को धर्म, मूलवंश, लिंग और जन्म स्थान के साथ रखा है। स्पष्ट है, संविधान ने न धर्म को समाप्त किया है, न मूलवंश को, न लिंग को न जन्म स्थान को लिखा यह गया है कि 'कोई नागरिक केवल, धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर – (क) दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश या (ख) राज्य निधि में पोषित या साधारण जनता के प्रयोग के लिए समर्पित कुओं, तालाबों, स्नानघाटों, सड़कों और सार्वजनिक सभागत के स्थानों के उपयोग के संबंध या शर्त के अधीन नहीं होगा। लेकिन माननीय सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश लिख रहे हैं, कि इस अनुच्छेद ने जाति को समाप्त कर दिया है। संविधान के अनुच्छेद 16(2) में लिखा गया है कि 'राज्य के अधीन किसी नियोजन या पद के संबंध में केवल धर्म,

मूलवंश, जाति, लिंग, उद्‌भव, जन्म स्थान, निवास या इनमें से किसी के आधार पर न तो कोई नागरिक अपात्र होगा और न उससे विभेद किया जायेगा। इसमें संविधान ने जाति या धर्म को समाप्त करने की कोई बात नहीं कही है।

1952 में पहली बार लोकसभा चुनाव हुआ था उस समय की राजनीति में दलितों की कोई खास भागीदारी नहीं थी। राजनीति में दलित और आदिवासियों की वोट की ताकत का महत्व का एहसास नहीं था भारत में चुनाव अभियान में जातिवाद को साधन के रूप में अपनाया जाता है। और प्रत्याशी जिस निर्वाचन क्षेत्र से चुनाव लड़ रहा होता है, उस क्षेत्र में जातिवाद की भावना को प्रायः उकसाया जाता है, ताकि संबंधित प्रत्याशी की जाति के मतदाओं का पूर्ण समर्थन प्राप्त किया जा सके। सभी राजनीतिक दलों द्वारा यह माना जाता है, कि राज्यस्तरीय मंत्रिमण्डलों में प्रत्येक प्रमुख जाति का मंत्री अवश्य होना चाहिए। केवल प्रांतीय स्तर पर ही नहीं बल्कि ग्राम पंचायती स्तर भी यह भावना काम करती है। 'मेयर' के अनुसार– 'जातीय संगठन राजनीतिक महत्व के दबाव समूह के रूप में प्रवृत हैं।

कोई भी राज्य ऐसा नहीं है, जहाँ पर राजनीति जातिवाद से प्रभावित नहीं हो रही। केरल, तमिलनाडु, राजस्थान, हरियाणा, बिहार, आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र आदि सभी राज्यों की राजनीति पर जातिवाद स्पष्ट रूप से हावी है।

जाति के आधार पर भेदभाव भारत में स्वतंत्रता से पहले भी विद्यमान था, लेकिन स्वतंत्रता के बाद प्रजातंत्र की स्थापना होने से समझा गया कि जातिगत भेद समाप्त हो जायेगा, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। राजनीतिक संस्थाएँ भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकी। फलस्वरूप जाति का राजनीतिकरण हो गया। जाति का राजनीतिकरण आधुनिकीकरण के मार्ग में बाधक सिद्ध हो रहा है, क्योंकि जाति को राष्ट्रीय एकता, सामाजिक साम्प्रदायिक सद्‌भाव एवं समरसता का निर्माण करने हेतु आधार नहीं बनाया जा सकता।

वैसे तो संविधान द्वारा अस्पृश्यता को लेकर अनेकों कानून बनाए गए, परन्तु जाति–विहीन समाज की स्थापना संविधान की अंतरात्मा नहीं बन पाई। अस्पृश्यता समाप्त कर दी गई परन्तु जाति व्यवस्था स्वयं बनी रही। अनुच्छेद 17 का अंबेडकर द्वारा किया गया प्रारूप यह था कि रैंक, जन्म, व्यक्ति, परिवार, धर्म या धार्मिक रूढ़ि और रीति–रिवाज से उत्पन्न किसी विशेषाधिकार या निर्योग्यता को समाप्त किया जाता है, परंतु इसे न तो प्रारूप समिति ने स्वीकार किया और न ही संविधान सभा ने स्वीकार किया। बिना चर्तुवर्ण या जाति का नाम लिए अंबेडकर ने इन पर आधारित विशेषाधिकारों या निर्योग्यताओं को समाप्त करने का प्रयास किया था और यदि उसे स्वीकार किया गया होता तो वह सामाजिक समता तथा सामाजिक न्याय की अवधारणा के ज्यादा समीप होता। वर्तमान अनुच्छेद 17 डॉ० के० एम० मुंशी के प्रारूप पर आधारित है। इसके पूर्व 1930 के दशक में मंदिर प्रवेश के लिए हरिजनों को प्रदान की जाने वाली व्यवस्था पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए अंबेडकर ने स्पष्ट किया था, कि 'यदि हिन्दू धर्म उनका धर्म' होना है, तो उसे सामाजिक एकता का धर्म होना होगा। मात्र हिन्दू संहिता का संशोधन कर मंदिरों में प्रवेश दिलाना पर्याप्त नहीं है। आवश्यकता है कि जाति व्यवस्था तथा अस्पृश्यता के जनक चर्तुवर्ण के सिद्धांत को समाप्त किया जाय।' डॉ० आर० सी० मजुमदार ने अपनी पुस्तक 'स्ट्रगल फॉर फ्रीडम' में स्पष्ट किया है कि इसका मात्र संतोषजनक उत्तर यह हो सकता था कि तीन हजार वर्षो से पुरानी व्यवस्था एक दिन में समाप्त नहीं होगी और इसके लिए धीरे–धीरे प्रयास जारी रहेगा। परंतु गाँधी सहित किसी हिन्दू नेता ने यह स्पष्ट रूप से जाति व्यवस्था के विरुद्ध विचार व्यक्त नहीं किया।

प्रत्येक राज्य में दलित अल्पसंख्यक हैं, जो विभिन्न जातियों के साथ मिश्रित जनसंख्या वाले समुदायों के लोगों के साथ रहते हैं। इसका अर्थ यह है, कि चुनाव के समय वे उन निर्वाचन क्षेत्रों में भी निर्णायक प्रभाव डाल सकते हैं, संघ के सभी राज्यों में और हर राज्य के प्रत्येक जिले में 10 प्रतिशत से 20 प्रतिशत के बीच उनका वोट है। इसलिए राजनीतिक दलों को अधिकांश लोकसभा और विधानसभा निर्वाचन क्षेत्रों में दलित हितों का ध्यान रखना पड़ता है। दलित मतदाता लगभग 300 निर्वाचन क्षेत्रों के निर्णय में असरदार भूमिका निभाते हैं।

पूरे देश में दलितों को तकरीबन एक ही तरह के संरचनात्मक दमक का सामना करना पड़ा है। इस समान अनुभव के कारण राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर दलितों की गोलबंदी बढ़ाने में मदद मिली है। इसका कारण यह है कि जाति व्यवस्था पूरे भारत में एक ही तरह से कार्य करती है। तमिलनाडु के गांवों की तरह उत्तर प्रदेश के गांवों में भी दलितों को सबसे निम्न कोटि का कार्य दिया जाता है, उन्हें उच्च जाति की बस्तियों से दूर बसने पर मजबूर किया जाता है। उन्हें दूषित जन स्रोतों से ही पानी लेने की अनुमति दी जाती है, और मंदिर में प्रवेश पर रोका जाता है। इसलिए वे गांवों, जिलों और राज्यों के बीच क्षैतिज एकजूटता और जुड़ाव का विकास कर सकते हैं।

जातिप्रथा के कारण समाज टुकड़ों में बंट गया, व्यक्ति–व्यक्ति के बीच भेदभाव बढ़ता गया, अहंकार और द्वेष के फलस्वरूप भारतवासी कभी एक नहीं हो सके, फलस्वरूप भारतवासियों को हमेशा विदेशी आक्रमणकारियों का सामना करना पड़ा।

अति–पिछड़े और दलित एक छोटी संख्या वाली जातियाँ हैं और इनका ठिकाना गाँव शहर में जहाँ–तहाँ फैला हुआ है, और इनकी इस अवस्था के कारण लोकतांत्रिक राजनीति में या चुनावों में इनका कोई खास योगदान नहीं रहता। ये ज्यादा समय अपनी जीविकोपार्जन की समस्याओं को सुलझाने में लगे होने के कारण ज्यादा समय राजनीतिक चुनावों को नहीं दे पाते। शिक्षा के अभाव के कारण भी इनमें कोई बड़ा राजनीतिक नेतृत्व विकसित नहीं हो पाता।

वर्तमान में धीरे–धीरे सरकारी योजनाओं के लाभ लेते हुए अब इनमें चेतना जागृत हो रही है, इनका रूझान अब शिक्षा तथा विकास की ओर अग्रसर हो रहा है, जिससे राजनीति में भी इनकी

भागीदारी बढ़ रही है। ये धीरे–धीरे संगठित होकर एक बड़े वोट बैंक में तब्दील हो रही है।

समय के साथ–साथ अब पिछड़ी जातियों को विधानसभा चुनाव में टिकट भी दिये जा रहे हैं, यहाँ तक की वर्तमान प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी भी वैश्य समुदाय से आते हैं। इसके अलावा सुशील मोदी जो बिहार में भाजपा के सबसे बड़े नेता भी वैश्य समुदाय से हैं इसके साथ–साथ उपेन्द्र कुशवाहा जो राष्ट्रीय लोक समता पार्टी के नेता हैं, और एन०डी०ए० में शामिल हैं, वो भी अति पिछड़ी जाति कुशवाहा आदि वर्तमान जनतांत्रिक राजनीति मे विद्यमान हैं।

निष्कर्ष

अतः निष्कर्ष के रूप में यह कह सकते हैं कि भारतीय समाज जातिगत भेद–भाव से इस कदर भरा पड़ा है, जो भयानक बीमारियों की तरह हमारे समाज को जकड़े हुए है, इसका निदान खोज पाना कठिन मालुम पड़ता है। यह केवल व्यक्ति–व्यक्ति के बीच खाई पैदा नहीं कर रही, बल्कि राष्ट्रीय एकता के मार्ग में भी बाधा पहुंचाने का कार्य कर रही है।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री एम० एन० श्रीनिवास का मत है कि "परंपरावादी जाति व्यवस्था ने प्रगतिशील और आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था को इस तरह प्रभावित किया है, कि ये राजनीतिक संस्थाएँ अपने मूलरूप में कार्य करने में समर्थ नहीं है।" अतः जातिवाद देश समाज और राजनीति के लिए बाधक सिद्ध प्रतीत होती है।

यह दुर्भाग्य की ही तो बात है, कि भारतीय राजनीति में जाति व्यवस्था इस प्रकार की स्थितियों का निर्धारण कर रही है और गरीब हमेशा, दलित अशिक्षित सामंतवादी उपनिवेश बने रहे। जात–पात बहुल हमारे इस समाज से यह अपेक्षा भी कैसे की जा सकती है, कि समाज में व्याप्त यह भयंकर बीमारी अचानक से चमत्कारिक ढंग से ठीक हो जाय। इस सच्चाई को कोई कितना भी नकारे लेकिन आज भी भारतीय जनतंत्र की राजनीति के केन्द्र में नागरिक न होकर जाति ही है। देश के स्वतंत्र होने के बावजूद भी समाज से यह बीमारी दूर नहीं हो सकी है। भारतीय संविधान ने अस्पृश्यता को तो गैरकानूनी घोषित कर दिया, लेकिन अभी भी अस्पृश्यता समाज से मिटी नहीं। इसके फलस्वरूप आज भी समाज का काफी बड़ा हिस्सा मानवाधिकारों से वंचित है।

संवैधानिक परिप्रेक्ष्य में यह संभावना व्यक्त की गई है कि स्वतंत्र भारत में जाति धार्मिक संप्रदाय की तरह शास्वतता प्राप्त करेगी। चिन्नम्मा बनाम डी०पी०आई० (ए०आई०आर० 1964 आंध्रप्रदेश 277) में गोड सारस्वत ब्राह्मण समुदाय के संप्रदाय अधिकार को मान्यता दी गई। डॉ० धुर्ये ने स्पष्ट किया है, कि जाति की भावना राष्ट्रीय एकता की भावना के प्रतिकूल है। न्यायमूर्ति 'एस० बी० वाड' ने अपनी पुस्तक 'कास्ट एण्ड लॉ' में इंगित किया है कि जाति–विहिन समाज की स्थापना संविधान में सकारात्मक रूप में घोषित उद्देश्य में नहीं रखा गया है। उन्होंने विचार व्यक्त किया है, कि जिस प्रकार अनु० 17 में अस्पृश्यकता का उन्मूलन किया गया है और 44वें संशोधन अधिनियम द्वारा संपति के मूल अधिकार को समाप्त किया गया है, उसी प्रकार जाति व्यवस्था को भी उन्मूलित कर दिया जाना चाहिए था। परंतु ऐसा नहीं किया गया। यदि ऐसा किया गया होता, तो अनुच्छेद 32 जाति व्यवस्था उन्मूलन संबंधी अधिकार के विरुद्ध प्राप्त होता।

लोकतंत्र व्यक्ति को इकाई मानता है, न कि किसी जाति या समूह को। जाति और समूह के आतंक से मुक्त रखना ही लोकतंत्र का आग्रह है। लोकसभा तथा विधानमंडलों के लिए जातिगत आधार पर आरक्षण की व्यवस्था प्रचलित है। केन्द्र एवं राज्यों की सरकारी नौकरियों तथा पदोन्नतियों के लिए भी जातिगत आरक्षण को अपनाया गया है। हरिजनों और अनुसूचित जातियों को प्रत्येक स्थान पर यहाँ तक की मेडिकल और इंजीनियरिंग कॉलेजों में विद्यार्थियों की भर्त्तियों के लिए भी आरक्षण दिया गया है। यह कहाँ तक उपयुक्त है। आरक्षण व्यवस्था को समाप्त कर इसका आधार सामाजिक और आर्थिक स्थिति को बनाया जाय।

जाति प्रथा भारत में ही नहीं अपितु विश्व के प्रत्येक देश में किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान है। पिछड़ी जातियाँ संविधान में दी गई आरक्षण की व्यवस्था को बढ़ाने हेतु सरकार पर दबाव डालती है।

स्पष्ट है कि जाति व्यवस्था में निश्चित तौर पर अनेक परिवर्तन परिलक्षित हुए है, परंतु इन तमाम परिवर्तनों के बावजूद जाति की वंशानुगत सदस्यता स्तरण तथा इसके सजातीय विवाह संबंधी पक्षों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। भारतीय जातीय व्यवस्था आधुनिक परिवर्तनों के साथ अभी भी अपनी निरंतरता बनाए हुए है। तमाम परिवर्तनों के बावजूद समकालीन भारत में जाति–व्यवस्था अपने अनुकूलन की अद्‌भुत क्षमता एवं लोकशाही में संख्याबल की महत्ता के कारण अपनी निरंतरता को बनाए हुए हैं। आज भी भारत के ग्रामीण समाजों में व्यक्ति की पहचान उनकी जाति से होती है। आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति की प्राप्ति की होड़ में विभिन्न जातियाँ एकता की जगह प्रतिस्पर्द्धात्मक एकता का विकास हुआ है। शहरों में भी अपने स्वार्थ सिद्धि हेतु जातिवाद एक प्रमुख क्रियाविधि के रूप में क्रियाशील है। हमारे देश के बुद्धिजीवी और राजनीतिक नेता इस संदर्भ में ईमानदारी के साथ सोचे और इस समस्या एवं इससे उत्पन्न अन्य समस्याओं का समाधान करने हेतु गंभीरतापूर्वक प्रयास करें।

संदर्भ

अखिल भारतीय शोषित कर्मचारी संघ,

भारत का संविधान, भारत सरकार, 1991,

श्रीनिवासन, एम0एन0,*आधुनिक भारत में जाति,*

राजकिशोर, *जाति का जहर,*